सहजयोग आज का महायोग

दैवीय संपदा को प्राप्त करने का मार्ग है सहजयोग

तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत।।
श्रीमद्भगवद्गीता

अर्थ - तेज (प्रभाव), क्षमा, धैर्य, शरीरकी शुद्धि, वैर भाव का न रहना और मान को न चाहना, हे भरतवंशी अर्जुन ! ये सभी दैवी सम्पदाको प्राप्त हुए मनुष्यके लक्षण हैं। प. पू. श्री माताजी निर्मला देवी प्रणित सहजयोग एक अनूठी ध्यान पद्धति इसलिये है क्योंकि यह ध्यान के साधक को सर्व-प्रथम 'निर्विचार अवस्था' प्रदान करता है और तद्नंतर साधक आत्मपरीक्षण कर अपनी अध्यात्मिक उत्थान की और अग्रसर होता है। पाँच हजार वर्ष पूर्व भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को यह योग यह बताया था और आज के कलियुग में पुनः एक बार आत्मा का ज्ञान देने वाला यह योग प. पू. श्री माताजी ने हम सभी के लिये प्रतिस्थापित किया है। इस ध्यान योग के माध्यम से जब हमारे सूक्ष्म शरीर में स्थित एक-एक चक्र स्वच्छ होते हैं तब हम धीरे-धीरे - अर्जुन जैसे देवी संपदा से अलंकृत होते हैं। जब हमारा मूलाधार चक्र स्वच्छ होता है तब हम अंतस से शुद्ध, निर्मल, निरंजन और अबोध बनते हैं।नियमित ध्यान से जब हमारा हृदय चक्र स्वच्छ होता है तब इसे धृतीः अर्थात धैर्य, आत्मविश्वास प्राप्त होता है । हमारे अंतकरण में सभी के लिए मित्रता की भावना और अतिशयता का अभाव व संपूर्ण संतुलन की अवस्था प्राप्त होती है । आज्ञा चक्र स्वच्छ होते ही हम क्षमाशील बन जाते हैं और सहस्त्रार चक्र पर नियमित ध्यान करने से हमें तेज अर्थात तेजस्विता प्राप्त होती है। हमारे संपर्क में आने वाले नकारात्मक व्यक्ति को भी हमारी उपस्थिति में गलत बर्ताव करने का साहस नहीं होता । प. पू. श्रीमाताजी कहते हैं कि उपरोक्त वर्णित सारे गुण एक सहज साधक में स्थित होने चाहिये अन्यथा सहज योग नहीं बढ़ेगा। भगवान श्रीकृष्ण ने हमें आत्मपरीक्षण करना सिखाया। हमें अपने अंदर के दोष ढूंढकर उन्हें निकालना होगा। हमे अपनी दृष्टि दूसरों से हटाकर अपनी ओर करनी होगी। श्री कृष्ण जी का स्थान हमारे विशुद्धि चक्र पर है और उनका ध्यान करने से हमारे अंदर के सारे दोषों की सफाई होती है और हमारे अंदर श्री कृष्ण जी के गुण जैसे की मधुरता, आल्हाद, हर्षोल्लास प्रस्थापित होता है। हम अपने आपसे या अन्य किसी से कभी भी नाराज नहीं होना चाहिये, यही सही मायने में श्री कृष्ण जी की पूजा है। तो आईये अपने अंदर दैवी संपदा धारण करने व करने के लिए सीखते हैं सहजयोग। अपने नजदीकी सहजयोग ध्यान केंद्र की जानकारी टोल फ्री नंबर 1800 2700 800 अथवा यूट्यूब चैनल लर्निंग सहजयोगा से प्राप्त कर सकते हैं।

परिवर्तन को स्वीकारो

जीवन का स्वभाव ही परिवर्तन है, फिर भी मनुष्य सबसे अधिक उसी से भयभीत रहता है, जैसे स्थिरता ही जीवन की शर्त हो। हम चाहते हैं कि परिस्थितियाँ वैसी ही बनी रहें जैसी आज हैं, लोग वैसे ही रहें जैसे हम उन्हें जानते हैं और समय भी हमारी सुविधा के अनुसार चले, पर जीवन ऐसा कोई वचन नहीं देता। परिवर्तन बिना अनुमति के आता है, बिना सूचना के दस्तक देता है और कई बार बिना कारण समझाए हमें नई दिशा में धकेल देता है। यहीं से असहजता जन्म लेती है, क्योंकि हम परिवर्तन को अवसर नहीं, संकट मान लेते हैं। जबकि सच्चाई यह है कि जो बदलता नहीं, वह ठहर जाता है और जो ठहर जाता है, वह धीरे धीरे अप्रासंगिक हो जाता है। प्रकृति को देखें तो हर ऋतु अपने साथ परिवर्तन लाती है, पत्ते गिरते हैं, नई कोंपलें फूटती हैं और वही वृक्ष अगली ऋतु में और अधिक सशक्त होकर खड़ा होता है। मनुष्य भी इसी प्रकृति का हिस्सा है, फिर वह स्वयं को परिवर्तन से अलग क्यों मानता है। परिवर्तन केवल परिस्थितियों में नहीं होता, हमारे विचारों, आदतों और दृष्टिकोण में भी होता है, और यही आंतरिक परिवर्तन बाहरी जीवन को नई दिशा देता है। कई बार हम अतीत की स्मृतियों से चिपके रहते हैं, क्योंकि वहाँ परिचितपन का सुकून होता है, पर वही सुकून आगे बढ़ने में बाधा भी बन जाता है। परिवर्तन को स्वीकारना पराजय नहीं, बल्कि परिपक्वता का संकेत है। यह मान लेना कि समय बदल रहा है और उसके साथ हमें भी स्वयं को गढ़ना है, यही जीवन बुद्धि है। आज के दौर में परिवर्तन और भी तीव्र हो गया है, तकनीक, कार्यशैली, संबंध और सोच सब कुछ तेजी से बदल रहा है, ऐसे में जो स्वयं को ढाल लेता है, वही संतुलन बनाए रख पाता है। परिवर्तन से भागने वाला व्यक्ति भीतर ही भीतर टूटता रहता है, जबकि उसे स्वीकार करने वाला उसे सीख में बदल लेता है। विशेषः परिवर्तन से लड़ने के बजाय यदि हम उसे समझना सीख लें, तो वही परिवर्तन हमारे विकास का सबसे सशक्त साधन बन जाता है।

ZEE5 पर शुरू होगी मस्ती 4 की स्ट्रीमिंग

सिनेमाघरों में धूम मचाने के बाद, मस्ती फ्रैंचाइज़ी की चौथी फिल्म, 'मस्ती 4' दर्शकों को फिर से दीवाना बनाने के लिए पूरी तरह तैयार है। अब अपने घर पर आराम से बैठकर, एक बार फिर से उस पागलपन का आनंद लेने के लिए तैयार हो जाइए, क्योंकि 23 जनवरी को हिंदी ZEE5 पर इस फिल्म का ग्लोबल प्रीमियर होने वाला है। वेवबैंड प्रोडक्शन और 'द्रढ़ स्टूडियोज़ द्वारा मासूति इंटरनेशनल और बालाजी टेलीफिल्म्स के सहयोग से प्रस्तुत की गई, मस्ती 4 को ए झुनझुनवाला और विक्रम कपूर और उमेश बंसल के साथ मिलकर प्रोड्यूस किया है। मिलाप ज़वेरी के डायरेक्शन में बनी मस्ती 4 में कॉमेडी तिकड़ी रितेश देशमुख, विवेक ओबेरॉय और आफताब शिवदासानी एक और मज़ेदार सफर के लिए वापस आ रहे हैं। फिल्म में अरशद वारसी, तुषार कपूर, नरगिस फाखरी, श्रेया शर्मा, रूही सिंह, एल्नाज़ नोरौज़ी और कई बेहतरीन कलाकारों ने भी अहम किरदार निभाए हैं।

सींग खोजता गदहा और साहित्य का दरबार

साहित्य की दुनिया बड़ी विचित्र है। यहाँ शब्दों से ज्यादा चमक पदों की होती जा रही है, विचारों से ज्यादा वज़न अवार्डों का हो गया है। कुछ लोग साहित्य के मैदान में ऐसे दौड़ रहे हैं जैसे गदहा अपनी सींग ढूँढ रहा हो–जिसका अस्तित्व कभी था ही नहीं, पर खोज इतनी बेचैन कि देखने वाले को भी भ्रम हो जाए कि शायद सचमुच कहीं कोई सींग खो गया है। कलम की जगह अब सिफारिशों के पंख लग गए हैं, और रचनाएँ कम, आवेदन-पत्र अधिक लिखे जा रहे हैं। पहले साहित्य साधना था, अब आयोजन हो गया है। कभी लेखक अपनी रचना से पहचाना जाता था, आज वह मंच की कुर्सी से पहचाना जा रहा है। कवि कम, 'मुख्य अतिथि' अधिक पैदा हो रहे हैं। कहानी से ज्यादा लंबी भूमिका हो गई है, और कविता से भारी सम्मान-पत्र। किसी ने ठीक ही कहा है– 'अब रचनाएँ नहीं, रचनाकारों के बैनर बड़े हो गए हैं। ' प्रेमचंद ने कभी कहा था कि साहित्य समाज का दर्पण है, पर आज वह दर्पण कम और मेकअप बॉक्स ज्यादा बन गया है। लेखक पहले लिखता था, फिर छपता था; अब पहले फोटो खिंचती है, फिर रचना लिखी जाती है। कई साहित्यकार ऐसे हैं जिनकी रचनाएँ ढूँढने से नहीं मिलतीं, पर उनके सम्मान-पत्र इतने हैं कि उनसे पूरा कमरा सज जाए। दार्शनिक ओशो ने कहा था– 'जहाँ अहंकार प्रवेश करता है, वहाँ सृजन मर जाता है।' पर आज का साहित्य अहंकार की सबसे सुरक्षित शरणस्थली बन गया है। कोई स्वयं को 'राष्ट्रीय कवि' घोषित कर रहा है, कोई 'महामहिम साहित्यशिरोमणि।' मज़े की बात यह है कि ये उपाधियाँ देने वाले भी वही लोग हैं, लेने वाले भी वही। पूरा खेल ऐसा है जैसे बच्चा खुद ताली बजाकर खुद को शाबाशी दे रहा हो। पहले रचनाकार अकेला होता था–अपने समय से लड़ता, समाज से संवाद करता। आज वह समूहों में बँट गया है। हर गली में एक साहित्यिक संगठन, हर संगठन में पाँच पद, और हर पद पर दस दावेदार। पद न मिले तो नाराज़गी, मिल जाए तो अहंकार। रचना बीच में कहीं लापता हो जाती है। रवींद्रनाथ टैगोर ने कहा था– 'कला पुरस्कार से नहीं, आत्मसंतोष से बड़ी होती है।' पर हमारे समय के कलाकार आत्मसंतोष नहीं, 'आत्म-प्रचार' में विश्वास करते हैं। सोशल मीडिया पर कविताओं से ज्यादा बधाइयाँ तैरती हैं। कोई सम्मान मिला नहीं कि बधाई संदेशों की बाढ़ आ जाती है, मानो देश की अर्थव्यवस्था सुधर गई हो। विडंबना यह है कि जितना छोटा लेखक, उतनी बड़ी उसकी उपाधि। किसी के नाम के आगे इतने विशेषण जुड़ गए हैं कि मूल नाम खोजने में पुरातत्व विभाग लगाना पड़े। एक महोदय तो अपने परिचय में इतना कुछ लिखते हैं कि उनकी कविता पढ़ने की हिम्मत ही नहीं बचती। कभी साहित्य में वैचारिक बहसें होती थीं–अब पदों की खींचतान होती है। पहले लोग रचना पर बात करते थे, आज इस पर बहस होती है कि किसे माला पहनाई गई और किसे नहीं। समारोहों में तालियाँ कविता पर नहीं, मुख्य अतिथि की घोषणा पर बजती हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी का एक वाक्य याद आता है– 'साहित्य मनुष्य को बड़ा बनाता है, छोटा नहीं।' लेकिन आज साहित्य कई लोगों को इतना बड़ा बना रहा है कि वे मनुष्य ही नहीं लगते। मंच पर चढ़ते ही उनकी आवाज में राजाओं जैसी गूँज आ जाती है, और नीचे उतरते ही वही पुरानी हड़बड़ी। कुछ साहित्यिक आयोजनों की हालत मेले जैसी हो गई है। वहाँ किताबों की कम, सेल्फी स्टिक की ज्यादा जरूरत पड़ती है। कवि सम्मेलन में कविता सुनने वाले कम, फोटो खिंचाने वाले ज्यादा होते हैं। ऐसा लगता है मानो साहित्य नहीं, विवाह समारोह चल रहा हो। एक बुजुर्ग लेखक ने कहा था– 'सम्मान वही है जो पाठक दे।' पर आज सम्मान वह है जो समिति दे, संस्था दे, या कोई प्रभावशाली आयोजक दे। पाठक बेचारा हाशिए पर खड़ा है। उसकी पसंद से ज्यादा महत्व प्रायोजक की पसंद का है। व्यंग्यकार शरद जोशी की पंक्ति याद आती है– 'जब अक्ल कम पड़ती है, तब उपाधियाँ काम आती हैं।' सचमुच, कई लोग उपाधियों के ऐसे भारी बोझ तले दबे हैं कि रचना की पतली गली से निकल ही नहीं पाते। साहित्य में यह पद-प्रेम इतना बढ़ गया है कि कुछ लोग लिखते कम, नाराज ज्यादा रहते हैं। फलाँ संस्था ने बुलाया क्यों नहीं, ढिकाँ ने मंच पर जगह क्यों नहीं दी–इन्हीं प्रश्नों में जीवन बीत रहा है। रचना से ज्यादा जरूरी हो गया है आयोजक से संबंध। कभी-कभी लगता है कि अगर कबीर आज होते तो उन्हें भी पहले 'राष्ट्रीय संत शिरोमणि' का आवेदन देना पड़ता, तब कहीं जाकर दोहा सुना पाते। तुलसीदास से भी पूछा जाता–आप किस संस्था के आजीवन सदस्य हैं? सच्चाई यह है कि पद प्रतिष्ठा की यह दौड़ साहित्य को भीतर से खोखला कर रही है। जो ऊर्जा लिखने में लगनी चाहिए थी, वह कुर्सी पकड़ने में खर्च हो रही है। शब्दों की जगह रणनीतियाँ जन्म ले रही हैं। एक प्रसिद्ध आलोचक ने कहा– 'रचना पेड़ है, पुरस्कार उस पर बैठा पक्षी।' पर आज लोग पेड़ उगाने से ज्यादा पक्षी पकड़ने में लगे हैं। जड़ें सूख रही हैं, पर पत्तों पर चमकदार बोर्ड टँगे हैं। कई बार तो यह भी देखा गया कि जिनकी एक भी दंग की पुस्तक नहीं, वे 'साहित्य भूषण' बने घूम रहे हैं। और जिन्होंने जीवन भर लिखा, वे चुपचाप कोने में बैठे हैं। यही हमारे समय का सबसे बड़ा व्यंग्य है। साहित्य मूलतः विनम्रता का संसार है, पर यहाँ अहंकार की फसल लहलहा रही है। हर कोई खुद को केंद्र में रखना चाहता है। संवाद की जगह घोषणाएँ हो रही हैं, और विमर्श की जगह विज्ञप्तियाँ। सोचता हूँ, अगर किताबें बोल पातीं तो शायद वे भी कहतीं–हमें कम छुओ, थोड़ा पढ़ भी लो। पर पढ़ने का धैर्य कहाँ! हमें तो बस मंच चाहिए, माइक चाहिए, और एक चमकदार स्मृति-चिह्न। यह दौड़ केवल व्यक्तिगत नहीं, सामूहिक बीमारी बन गई है। संस्थाएँ भी उसी को बड़ा मानती हैं जो भीड़ जुटा सके, भले साहित्यिक स्तर कुछ भी हो। परिणाम यह कि शोर बढ़ रहा है, स्वर कम हो रहे हैं। फिर भी उम्मीद बाकी है। कहीं-कहीं अब भी ऐसे रचनाकार हैं जो चुपचाप लिख रहे हैं, बिना पद के, बिना पोस्टर के। वे जानते हैं कि असली सम्मान समय देता है, समिति नहीं। साहित्य का भविष्य उन्हीं के हाथों में है, न कि उन लोगों के जो गदहे की तरह सींग खोज रहे हैं। सींग मिल भी जाए तो गदहा घोड़ा नहीं बनता, जैसे पद मिल जाने से कोई बड़ा लेखक नहीं बन जाता। जरूरत है कि हम फिर से रचना की ओर लौटें, शब्द की गरिमा समझें। पद आए तो ठीक, न आए तो भी ठीक–पर कलम चलती रहनी चाहिए। क्योंकि साहित्य का असली सिंहासन पाठक के हृदय में होता है, मंच की कुर्सी पर नहीं। और अंत में बस इतना ही कहना है कि जो सचमुच लिखते हैं, उन्हें पद नहीं ढूँढने पड़ते; पद खुद उन्हें ढूँढ लेता है। बाकी लोग खोजते रहें अपनी काल्पनिक सींग–साहित्य तो अपनी राह पर चुपचाप चलता रहेगा।

कुमार धनंजय सुमन
सोनवर्षा,थाना–
बिहपुर,भागलपुर,बिहार
853201

गांधी के तीन बंदर और आज का डिजिटल युग

कभी महात्मा गांधी ने समाज को नैतिकता का सरल सूत्र दिया था–न बुरा देखो, न बुरा सुनो, न बुरा बोलो, परंतु आज का युग बदल चुका है, माध्यम बदल गए हैं और मनुष्य की परीक्षा अब चरित्र से अधिक सतर्कता की हो गई है, ऐसे में गांधी के तीन बंदर भी नए रूप में हमारे सामने खड़े दिखाई देते हैं, फर्क बस इतना है कि पहले वे आदर्श के प्रतीक थे और आज लापरवाही के, पहला बंदर वह है जो हर अनजान फोन को अधिकारिक आदेश मानकर घबरा जाता है।

सामने वाला खुद को बैंक कर्मचारी, पुलिस अधिकारी या किसी विभाग का प्रतिनिधि बताता है और यह बंदर बिना सोचे-समझे अपने मोबाइल पर आया गोपनीय अंक बता देता है, फिर कुछ ही क्षणों में खाते की सफाई हो जाती है और बाद में वही व्यक्ति कहता है कि ठगी हो गई, दूसरा बंदर वह है जो मीठी आवाज और डराने वाली भाषा के बीच अंतर नहीं कर पाता, कोई कहता है कि आपका खाता बंद हो जाएगा, कोई कहता है कि इनाम मिला है, कोई कहता है कि आपकी शिकायत दर्ज है और यह बंदर बिना सवाल किए डर के आगे घुटने टेक देता है, तीसरा बंदर सबसे अधिक उत्साही है, उसे हर चमकता संदेश अवसर लगता है, हर अनजान कड़ी सौभाग्य का द्वार दिखती है, वह न पढ़ता है, न सोचता है, बस उंगली चलाता है और देखते ही देखते अपनी मेहनत की कमाई किसी अनजान हाथ में सौंप देता है, विडंबना यह है कि सरकार, बैंक, समाचार पत्र और सामाजिक संस्थाएँ वर्षों से समझा रही हैं कि गोपनीय अंक किसी को न बताएं, अनजान फोन से सावधान रहें, अज्ञात संदेश न खोलें, फिर भी समाज का एक बड़ा वर्ग इन्हीं गलतियों को दोहराता रहता है, ठगी के बाद रोष व्यक्त किया जाता है, व्यवस्था को कोसा जाता है, अधिकारियों को दोष दिया जाता है, जबकि सच्चाई यह है कि लापरवाही का पहला और आखिरी कारण स्वयं नागरिक ही होता है, आज ठग बंदूक लेकर नहीं आते, वे शब्दों से वार करते हैं, डर से हमला करते हैं और लालच से जाल बिछाते हैं, और हमारे ये तीन बंदर स्वयं उस जाल में कूद जाते हैं, विशेष चिंता का विषय यह है कि वरिष्ठ नागरिक, गृहिणियाँ और पहली बार मोबाइल उपयोग करने वाले लोग इस जाल का सबसे आसान शिकार बन रहे हैं, परिवार के युवा सदस्य समझाते हैं, बच्चे चेतावनी देते हैं, फिर भी अनुभव का अहंकार सतर्कता को पीछे छोड़ देता है, डिजिटल सुविधा ने जीवन को सरल बनाया है, परंतु असावधानी ने खतरे भी उतने ही बढ़ा दिए हैं, गांधी के समय में बुरा देखने, सुनने और बोलने से बचने की बात थी, आज बुरा समझने से बचने की बीमारी फैल गई है, लोग देख भी रहे हैं, सुन भी रहे हैं, फिर भी समझना नहीं चाहते, यही कारण है कि ठगी की घटनाएँ रुकने का नाम नहीं ले रहीं, समाज को अब नए सूत्र की आवश्यकता है–न गोपनीय अंक बताओ, न फर्जी कॉल पर भरोसा करो, न अज्ञात संदेश खोलो, जब तक यह सूत्र व्यवहार में नहीं उतरेगा, तब तक गांधी के ये नए बंदर यूँ ही घूमते रहेंगे।

ठगों की पाठशाला चलती रहेगी और अखबारों के पन्ने रोज ऐसी खबरों से भरते रहेंगे, जागरूकता कोई अभियान नहीं, यह दैनिक आदत है, जैसे दरवाजा बंद करना, वैसे ही मोबाइल पर सोच समझकर उत्तर देना, जैसे सड़क पार करते समय दाएं-बाएं देखना, वैसे ही किसी संदेश को खोलने से पहले ठहरना, यदि समाज यह नहीं सीखेगा तो आने वाली पीढ़ी हमें सुविधा नहीं, लापरवाही की विरासत के लिए याद करेगी, इसलिए समय आ गया है कि गांधी के तीन बंदरों को दीवार पर सजाने की बजाय जीवन में उतारा जाए, इस बार प्रतीक बदलकर–न गोपनीय अंक दो, न झूठे डर से डरो, न लालच के संदेशों में फँसो।

अजय कुमार बियानी, इंजीनियर

स्वतंत्र संस्थान होना चाहिए

महोदय,
वैसे तो ममता बनर्जी और केन्द्र सरकार में खटपट होती रहती है और आरोप प्रत्यारोपण एक परंपरा सी बन गई है मगर द्धन्न्रह्र छापेमारी से जुड़ा मामला इन दिनों बड़ी गहमागहमी में है। चूंकि मामला फिलहाल सुप्रीम कोर्ट में विचाराधीन है लेकिन अब तक की कार्यवाही कई अहम संकेत देती है। अदालत द्वारा बंगाल पुलिस को ईडी के खिलाफ जांच से रोकना और राज्य सरकार से जवाब मांगना दिखाता है कि मामला बड़ा पेंचदार है। ईडी और राज्य पुलिस के एक-दूसरे पर लगाए आरोप एजेंसियों की निष्पक्षता पर सवाल खड़े करते हैं। साथ ही ईडी की कार्रवाई की टाइमिंग, खासकर चुनावी वर्ष में हो तो सवाल उठना स्वाभाविक है। दर्ज मामलों पर गौर करें तो आंकड़े बताते हैं कि सजा की दर बेहद कम रही है जिससे कार्यशैली पर पुनर्विचार जरूरी लगता है। हालांकि अंतिम सत्य अदालत के फैसले से ही सामने आएगा पर फिर भी पारदर्शिता के लिए एजेंसियों को राजनीतिक प्रभाव से परे दिखना अनिवार्य है।

अमृतलाल मारू 'रवि' इन्दौर मप्र

जब शब्द मुस्कान बन जाएँ

दूसरों के चेहरे पर मुस्कान लाना कोई आसान काम नहीं है। एक व्यक्ति को स्वयं अपने चेहरे पर सच्ची मुस्कान लाने के लिए न जाने कितना इंतज़ार और कितने प्रयास करने पड़ते हैं, तब कहीं जाकर वह खुलकर हँस पाता है।

विज्ञान भी मुस्कान और हँसी के महत्व को स्वीकार करता है। हँसने से शरीर में कई सकारात्मक हार्मोन स्रावित होते हैं।

जैसे एंडोर्फिन दर्द निवारक का कार्य करता है,

डोपामिन खुशी का अनुभव कराता है और तनाव को कम करता है, सेरोटोनिन हमारे मूड को बेहतर बनाए रखता है और मन को शांति प्रदान करता है, जबकि ऑक्सीटोसिन, जिसे लव हार्मोन कहा जाता है, नकारात्मकता को कम कर प्रेम और अपनत्व की भावना को बढ़ाता है।

यह लेख उन सभी हास्य कवियों को समर्पित है, जिनके पास दूसरों को हँसाने और उनके जीवन में कुछ पल की राहत और आनंद भर देने की अद्भुत क्षमता है।

रविवार को आयोजित एक हास्य कवि सम्मेलन में जाने का अवसर मिला, जहाँ पूरे तीन घंटे तक श्रोताओं को केवल ठहाके लगाते देखा।

साथ ही अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त कवियों से रूबरू होने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ।

अंतर्राष्ट्रीय पद्मश्री सम्मानित आदरणीय सुरेंद्र शर्मा जी, अंतर्राष्ट्रीय कवि श्री राजीव शर्मा जी, रुचि चतुर्वेदी, दिनेश देहाती और दीपक दनादन

इन सभी कवियों ने श्रोताओं को सिर्फ हंसाते रहे और यात नहीं इतना ज्यादा कब हंसा होगा ।

सभी कवियों का तहे दिल से आभार और धन्यवाद।

ईश्वर ने आपको यह अनुपम नियामत दी है किसी के चेहरे पर मुस्कान और दिल में खुशी भर देने की शक्ति। यह वास्तव में एक महान और पुण्य का कार्य है।

तनाव हर किसी की जिंदगी में होता है, लेकिन उसे पालकर मत रखिए। उससे बाहर निकलने के उपाय खोजिए, नकारात्मकता से दूरी बनाइए। जिंदगी सिर्फ एक बार मिलती है, इसलिए इसे यूँ ही व्यर्थ मत गंवाइए।

खुद भी मुस्कुराते रहिए और दूसरों के चेहरे पर भी मुस्कान लाने की निरंतर कोशिश करते रहिए। फिर देखिए बहुत सुकून मिलेगा ।

और खिलखिलाहट से हार्मोन स्त्रावित होंगे जो आपको मन की शांति, प्रेम, सुकून का एहसास कराएंगे और तनाव से परे रखेंगे।

हंसते रहिए खुद के लिए और औरों के लिए भी।

सुरेखा सरोदे, इंदौर

'कांतारा चैप्टर 1' का वर्ल्ड टेलीविज़न प्रीमियर

इस गणतंत्र दिवस, ज़ी सिनेमा लेकर आ रहा है एक भव्य गाथा, 'कांतारा चैप्टर 1' का वर्ल्ड टेलीविज़न प्रीमियर सोमवार, 26 जनवरी को शाम 7 बजे। ऋषभ शेट्टी और रुक्मिणी वसंत स्टारर यह फिल्म आस्था का उत्सव है, भक्ति की गर्जना है और सिनेमा की एक बड़ी जीत भी, जो भारतीय परंपराओं, भावनाओं और भव्यता का जीवंत चित्रण करते हुए हमारी संस्कृति और आध्यात्मिक जड़ों को सम्मान देती है।इस कहानी के केंद्र में इंसान, प्रकृति और ईश्वर के बीच दर्शाया गया वो बेहद गहरा रिश्ता है, जो पीढ़ियों से भारतीयों की ताकत रहा है। शानदार विजुअल्स और भव्य स्तर पर बनी यह फिल्म दर्शकों को घने जंगलों के शानदार दृश्यों से लेकर मंत्रमुग्ध कर देने वाले अनुष्ठानों तक ले जाती है, जहाँ हर फ्रेम को इतने ध्यान से गढ़ा गया है कि देखने का अनुभव और भी मनमोहक हो जाता है।

अच्छे दिन कब आएंगे

अच्छे दिन कब आएंगे अपने आप में यह एक बड़ा सवाल है। अच्छे दिनों की परिभाषा सबके लिए भिन्न-भिन्न हो सकती है। लेकिन कुछ यूनिवर्सल बातें ऐसी हैं जो अच्छे दिनों के लिए हमारे जीवन में होना बहुत आवश्यक है। इनके बिना अच्छे दिनों की कल्पना करना बेमानी है। इस संबंध में एक तथ्य और भी है जिसे हम प्रायः इग्नोर कर देते हैं। दिन तो सभी अच्छे हैं अच्छा तो मानव समाज को बनना होगा। अगर इंसानों में इंमानदारी, सदभावना, संवेदना, संतोष, देश प्रेम और पराक्रम के भाव जागृत हो जायें तो आने वाले कल से ही अच्छे दिनों की आहट सुनाई देने लगेगी। सरकार भी अच्छे दिन लाने का लॉलीपॉप देश की जनता को देती आई है। कुछ अंशों में सरकार का यह दावा सार्थक भी हुआ है। सरकार और देश की जनता के संयुक्त प्रयासों से ही अच्छे दिन के सपने को साकार किया जा सकता है। अच्छे दिन लाने के लिए जिम्मेदार बनना एवं जिम्मेदारी तय करना जरूरी है। ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन, पर्यावरणीय असंतुलन एवं मौसम के कुपित हो जाने के कारण जीवधारी समस्त समाज कष्ट उठा रहा है। निसर्ग को उसके वास्तविक स्वरूप में पुनः लाने के लिए भी सरकार और जनता को मिशन मोड पर अभियान चलाना चाहिए। अच्छे दिनों की पूर्णता को समग्र रूप से तभी आंका जा सकेगा।

-ललित महालकरी इंदौर

एक सवाल.....?

वेनेजुएला की विपक्षी नेता 2025 की नोबेल विजेता मारिया कोरिया मचाडो ने ट्रम्प को सौंप दिया अपना नोबेल मैडल--खबर

टिप्पणी -- क्या मैं भी स्कूल के दिनों में वाद-विवाद में जीता गया मैडल वाद -विवाद में योग्यता के आधार पर पत्नी को सौंप सकता हूं ...

---संजय डागा हातोद